

तिरुवेंगाडा पिल्लै

बनाम

नावनीथमल और अन्य

(2001 का दीवानी अपील संख्या 290)

19 फरवरी, 2008

(आर.वी. रवीन्द्रन और पी. सथासिवम)

विशिष्ट पालन—विक्रय अनुबंध के विशिष्ट पालन हेतु वाद—प्रतिवादी द्वारा विलेख के निष्पादन से इंकार—विचारण न्यायालय द्वारा इस आधार पर दस्तावेज की प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त किया गया कि अभिप्रमाणक साक्षी विश्वसनीय नहीं थे; दस्तावेज दो भिन्न तिथियों के स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया था; तथा विवादित अंगूठा-निशान सिद्ध करने हेतु अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ से परीक्षण न कराए जाने के कारण वादी निष्पादन सिद्ध करने का भार निर्वहन करने में असफल रहा—प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आदेश उलट दिया गया तथा भार प्रतिवादी पर डाल दिया गया—न्यायालय ने विशेषज्ञ मत की सहायता के बिना स्वयं विवादित अंगूठा-निशान तथा स्वीकृत अंगूठा-निशान की तुलना की और यह निष्कर्ष निकाला कि वह निष्पादक का ही अंगूठा-निशान था—उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के आदेश को उलट दिया गया—अपील पर, अभिनिर्धारित : यद्यपि भिन्न-भिन्न तिथियों पर क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया दस्तावेज ग्राह्य है, तथापि वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में उसकी वास्तविकता संदेहास्पद है—प्रतिवादी द्वारा निष्पादन से इंकार किए जाने के दृष्टिगत, उसे सिद्ध करने का भार वादी पर था—प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा, अंगूठा-निशान स्पष्ट न होने की स्थिति में, विशेषज्ञ मत की सहायता के बिना विवादित अंगूठा-निशान की स्वीकृत अंगूठा-निशान से तुलना करना उचित नहीं था—

स्टाम्प अधिनियम, 1899—धारा 54—स्टाम्प नियम, 1925—साक्ष्य अधिनियम, 1872—
धाराएँ 45 एवं 73—सिद्ध करने का भार।

वादी-अपीलकर्ता ने विशिष्ट पालन हेतु वाद दायर किया। उसका अभिकथन था कि उत्तरदाता संख्या 2 के पूर्ववर्ती-प्रतिवादी (प्रतिवादी संख्या 1) ने अपीलकर्ता के साथ दिनांक 5.1.1980 को एक विक्रय अनुबंध किया था। अपीलकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1 को विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आह्वान करते हुए एक सूचना प्रेषित की। प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अनुबंध से इंकार किया गया। अनुबंध के पालन से बचने के लिए प्रतिवादी संख्या 1 ने अपने निकट संबंधी उत्तरदाता संख्या 1-प्रतिवादी के पक्ष में एक नाममात्र का विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया। वाद की लंबितावस्था के दौरान प्रतिवादी संख्या 1 की मृत्यु हो गई और उसके स्थान पर उत्तरदाता संख्या 2 को प्रतिस्थापित किया गया। वादी ने स्वयं को, अनुबंध के लेखक को तथा अभिप्रमाणक साक्षी को साक्षी के रूप में परीक्षित कराया। विचारण न्यायालय ने इस आधार पर अनुबंध की वास्तविकता पर संदेह व्यक्त करते हुए वाद खारिज कर दिया कि अनुबंध दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया था, जिनमें एक वर्ष 1973 का तथा दूसरा वर्ष 1978 का था और वे वर्तमान में क्रय किए गए स्टाम्प पत्र नहीं थे; कि अनुबंध के दोनों अभिप्रमाणक वादी के निकट संबंधी थे; तथा यह कि अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ को संदर्भित करने का अनुरोध न करने के कारण वादी अनुबंध के निष्पादन को सिद्ध करने के अपने भार का निर्वहन करने में असफल रहा।

प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटते हुए अभिनिर्धारित किया कि अनुबंध के अभिप्रमाणक वादीगण से संबंधित नहीं थे; कि अनुबंध के संबंध में उत्पन्न संदेह को सिद्ध करने का भार प्रतिवादियों पर था क्योंकि वे उसकी वास्तविकता पर संदेह कर रहे थे; कि अनुबंध पर अंकित अंगूठा-निशान और उत्तरदाता संख्या 1 के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख पर अंकित अंगूठा-निशान में कोई उल्लेखनीय

अंतर नहीं था, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुबंध प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा निष्पादित किया गया था; तथा यह कि दो स्टाम्प पत्रों पर अनुबंध का निष्पादन उसे अवैध नहीं बनाता।

द्वितीय अपील में, उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए अभिनिर्धारित किया कि नकारात्मक तथ्य को सिद्ध करने का भार प्रतिवादियों पर गलत रूप से डाला गया था; कि अनुबंध के अवलोकन से यह प्रकट होता है कि अंगूठा-निशान स्पष्ट नहीं था और इसलिए विशेषज्ञ मत के अभाव में अंगूठा-निशान के संबंध में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष सही नहीं था; तथा विचारण न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि की।

इस न्यायालय में अपील में, उत्तरदाता ने अन्य बातों के साथ यह तर्क दिया कि पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग अनुबंध को अवैध बना देगा, प्रथम, क्योंकि स्टाम्प पत्र छह माह से अधिक पुराने होने के कारण वैध नहीं थे और इस प्रकार उन पर तैयार किया गया अनुबंध भी वैध नहीं था, तथा द्वितीय, क्योंकि विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए स्टाम्प पत्रों का उपयोग करना अवैध था।

अपील खारिज करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित : 1.1. स्टाम्प अधिनियम, 1899 कहीं भी स्टाम्प पत्र के उपयोग हेतु कोई समाप्ति तिथि निर्धारित नहीं करता है। धारा 54 केवल यह उपबंधित करती है कि कोई व्यक्ति, जिसके पास ऐसा स्टाम्प पत्र है जिसका उसे तत्काल कोई उपयोग नहीं है (जो खराब अथवा अनुपयुक्त या अनुपयोगी नहीं हुआ है), ऐसे स्टाम्प पत्र को समर्पित करके उसका मूल्य वापस पाने की मांग समाहर्ता से कर सकता है, बशर्ते कि वह उस तिथि से पूर्ववर्ती छह माह की अवधि के भीतर क्रय किया गया हो जिस तिथि को उसे समर्पित किया गया है। धारा 54 में विनिर्दिष्ट छह माह की अवधि का उपबंध केवल अप्रयुक्त स्टाम्प

पत्र के मूल्य की वापसी प्राप्त करने के प्रयोजन हेतु है, न कि स्टाम्प पत्र के उपयोग हेतु। धारा 54 उस व्यक्ति से, जिसने स्टाम्प पत्र क्रय किया है, यह अपेक्षा नहीं करती कि वह उसका उपयोग छह माह के भीतर करे। अतः प्रस्तावित निष्पादन की तिथि से छह माह से अधिक पूर्व क्रय किया गया स्टाम्प पत्र किसी दस्तावेज़ के लिए उपयोग किए जाने में कोई बाधा नहीं है। [कंडिका 11] [36-ए-डी]

1.2. तमिलनाडु में लागू स्टाम्प नियम, 1925 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि अपेक्षित मूल्य के स्टाम्प पत्र एक साथ, एक ही विक्रेता से तथा क्रमिक क्रमांकों के साथ क्रय किए जाएँ। नियम केवल यह उपबंधित करते हैं कि जहाँ किसी लिखत के संबंध में प्रभार्य शुल्क की राशि पूरी करने के लिए ऐसे दो या अधिक कागज़ों का उपयोग किया जाता है जिन पर स्टाम्प उत्कीर्ण अथवा मुद्रांकित हों, वहाँ उस लिखत का एक भाग प्रत्येक ऐसे प्रयुक्त कागज़ पर लिखा जाएगा। न्यायालय के संज्ञान में कोई अन्य नियम नहीं लाया गया, जो तमिलनाडु राज्य में क्रमिक क्रमांक वाले स्टाम्प पत्रों के उपयोग की अपेक्षा करता हो। स्टाम्प अधिनियम एक राजस्व संबंधी अधिनियम है, जिसका उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है। किसी ऐसे नियम के अभाव में, जो यह अपेक्षा करता हो कि उसी दिन क्रय किए गए क्रमिक क्रमांक वाले स्टाम्प पत्रों का उपयोग ऐसे लिखत के लिए किया जाए जिसका पंजीकरण अभिप्रेत नहीं है, किसी दस्तावेज़ को केवल इस कारण अवैध नहीं कहा जा सकता कि वह एक ही व्यक्ति द्वारा विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया है। यह मान भी लिया जाए कि ऐसे स्टाम्प पत्रों का उपयोग एक अनियमितता है, तब भी न्यायालय केवल यह मान सकता है कि दस्तावेज़ पर सम्यक् रूप से स्टाम्प नहीं लगाया गया है, किन्तु केवल उसी आधार पर दस्तावेज़ को अवैध नहीं ठहरा सकता। यदि कोई अनुबंध अपेक्षित स्टाम्प पत्र पर निष्पादित नहीं किया गया है, तब भी वह भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 अथवा 37 के अधीन शुल्क एवं शास्ति का भुगतान किए जाने पर साक्ष्य में ग्राह्य है। यदि साधारण कागज़ पर निष्पादित

कोई अनुबंध शुल्क एवं शास्ति का भुगतान करके साक्ष्य में ग्राह्य हो सकता है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि दो स्टाम्प पत्रों पर निष्पादित अनुबंध, यह मान भी लिया जाए कि वे दोषपूर्ण थे, शुल्क एवं शास्ति के भुगतान पर स्वीकार न किया जा सके। किन्तु किसी दस्तावेज़ का साक्ष्य में ग्राह्य होना और ऐसे दस्तावेज़ की वास्तविकता का सिद्ध होना, भिन्न-भिन्न प्रश्न हैं। [कंडिका 12] [36-एफ-एच; 37-ए-ई]

1.3 विभिन्न तिथियों के अत्यंत पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग किया जाना निश्चय ही ऐसी परिस्थिति हो सकती है, जिसका उपयोग अनुबंध की प्रामाणिकता पर संदेह उत्पन्न करने हेतु साक्ष्य के एक अंश के रूप में किया जा सकता है। किन्तु वह निर्णायक साक्ष्य नहीं हो सकता। यह संभावना भी है कि स्टाम्प संबंधी विधिक उपबंधों से अपरिचित कोई सामान्य व्यक्ति सद्भावनापूर्वक यह समझे कि वह अपने पास पड़े पुराने अप्रयुक्त स्टाम्प पत्रों का उपयोग दस्तावेज़ तैयार करने हेतु कर सकता है और तदनुसार उन पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग कर ले। [कंडिका 13] [37-एच; 38-ए-बी]

2.1 यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय विवादित हस्तलेख/हस्ताक्षर/अंगुलि-निशान की तुलना स्वीकृत हस्तलेख/हस्ताक्षर/अंगुलि-निशान से कर सकता है, तथापि किसी विशेषज्ञ की सहायता के बिना न्यायालय द्वारा की गई ऐसी तुलना को सदैव जोखिमपूर्ण और संकटपूर्ण माना गया है। जब यह कहा जाता है कि न्यायालय को विवादित अंगुलि-निशान की तुलना स्वीकृत अंगुलि-निशान से करने से कोई निषेध नहीं है, तो यह स्वतः स्पष्ट है कि वह ऐसी तुलना के आधार पर मत अथवा निष्कर्ष तभी अभिलिखित कर सकता है, जब वह स्वीकृत अंगुलि-निशान की विशेषताओं का विश्लेषण कर ले तथा यह सत्यापित कर ले कि वही विशेषताएँ विवादित अंगुलि-निशान में भी विद्यमान हैं। [कंडिका 15] [40-डी-एफ]

2.2 दो अंगूठा-निशानों की तुलना साधारण अथवा मात्र एक दृष्टिपात से नहीं की जा सकती। निर्णय में यह निष्कर्ष कि स्वीकृत अंगूठा-निशान और विवादित अंगूठा-निशान के बीच कोई उल्लेखनीय अंतर प्रतीत नहीं होता, और उससे अधिक कुछ नहीं, इस रूप में वैध निष्कर्ष के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता कि विवादित अंगूठा-निशान उसी व्यक्ति का है जिसने स्वीकृत अंगूठा-निशान अंकित किया है। जहाँ न्यायालय यह पाता है कि विवादित अंगुलि-निशान और स्वीकृत अंगूठा-निशान स्पष्ट हैं तथा न्यायालय अंगुलि-निशानों की विशेषताओं की पहचान करने की स्थिति में है, वहाँ न्यायालय विशेषज्ञ के मत के अभाव में भी तुलना के आधार पर निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है। किन्तु जहाँ विवादित अंगूठा-निशान धुंधला, अस्पष्ट अथवा अत्यन्त हल्का हो, वहाँ न्यायालय को साधारण अवलोकन के आधार पर अनुमान लगाने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए। [कंडिका 15] [40-एफ-एच; 41-ए-बी]

2.3 जहाँ उस व्यक्ति द्वारा, जिसके बारे में यह कहा गया हो कि उसने अपना अंगुलि-निशान अंकित किया है, स्पष्ट रूप से उसका खंडन किया गया हो तथा विवादित दस्तावेज़ में अंकित अंगुलि-निशान अस्पष्ट, धुंधला अथवा स्पष्ट न हो, जिससे तुलना करना कठिन हो जाए, वहाँ न्यायालय को विवादित एवं स्वीकृत अंगुलि-निशानों की अपनी तुलना के आधार पर निर्णय देने का साहस करने में संकोच करना चाहिए। यहाँ तक कि उन मामलों में भी, जहाँ न्यायालय ऐसी तुलना करने के लिए विवश हो, उसे विशेषताओं, समानताओं तथा असमानताओं का निर्धारण करने हेतु, यदि आवश्यक हो तो अधिवक्ताओं की सहायता से, गहन अध्ययन करना चाहिए। यदि न्यायालय अंगूठा-निशान की तुलना के आधार पर कोई निष्कर्ष अभिलिखित करना चुनता है, तो निर्णय में ऐसे निष्कर्ष के कारण भी अनिवार्यतः समाविष्ट होने चाहिए। न्यायालय को केवल साधारण अथवा नियमित दृष्टिपात या अवलोकन के आधार पर निष्कर्ष निकालने से बचना चाहिए। [कंडिका 15] [41-बी-ई]

2.4 वर्तमान वाद में, प्रथम प्रतिवादी ने एक्स. ए-1 पर अपना अंगुलि-निशान अंकित किए जाने से इंकार किया था। वाद की लंबितावस्था के दौरान, उसके साक्ष्य देने की बारी आने से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। उच्च न्यायालय ने दस्तावेज़ का परीक्षण करने के पश्चात् स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि एक्स. ए-1 पर अंकित अंगूठा-निशान फीका तथा अस्पष्ट था। यद्यपि दस्तावेज़ दिनांक 1980 का था, तथापि वह दो स्टाम्प पत्रों पर निष्पादित किया गया था, जो क्रमशः वर्ष 1973 और 1978 में क्रय किए गए थे। अनुबंध में इस कथन के विपरीत कि कब्जा वादी को प्रदान कर दिया गया था, वास्तव में कब्जा वादी को प्रदान नहीं किया गया था, बल्कि वह प्रथम प्रतिवादी के पास ही बना रहा और उसने ही कब्जा द्वितीय प्रतिवादी को प्रदान किया। स्वत्व विलेख वादी को प्रदान नहीं किए गए थे। अभिप्रमाणक साक्षी वादी के निकट संबंधी थे तथा उनमें से एक का परीक्षण नहीं किया गया था। लेखक का साक्ष्य असंतोषजनक था। यह विश्वास करना भी कठिन था कि प्रथम प्रतिवादी, जो एक गाँव की अशिक्षित वृद्ध महिला थी, दिनांक 5.1.1980 को वादी के साथ विक्रय अनुबंध करेगी और फिर, जबकि वह विक्रय को पूर्ण करने के लिए तैयार था, लगभग एक माह पश्चात्, दिनांक 11.2.1980 को संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति को विक्रय कर देगी। इस पृष्ठभूमि में, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किसी विशेषज्ञ मत के लाभ के बिना, मात्र साधारण अवलोकन के आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित करना कि दोनों अंगूठा-निशानों में कोई उल्लेखनीय अंतर प्रतीत नहीं होता और इसलिए एक्स. ए-1 (विक्रय अनुबंध) प्रथम प्रतिवादी द्वारा निष्पादित किया गया होगा, अविवेकपूर्ण था। [कंडिका 16] [41-ई-एच; 42-ए-डी]

3. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादियों पर सिद्ध करने का भार गलत रूप से डालकर विचारण न्यायालय के निर्णय को उलट दिया। उसका यह अवलोकन कि जब वादी द्वारा प्रस्तुत अपंजीकृत दस्तावेज़ के निष्पादन का प्रतिवादियों द्वारा खंडन किया गया था, तब यह प्रतिवादियों का दायित्व था कि वे यह स्थापित करें कि दस्तावेज़ जाली अथवा

मनगढ़ंत था, एक सुदृढ विधिक प्रतिपादन नहीं है। प्रथम अपीलीय न्यायालय इस तथ्य को दृष्टि से ओझल कर बैठा कि जो पक्षकार दस्तावेज़ प्रस्तुत करता है, उसी को उसे सिद्ध करना होता है। इस वाद में वादीगण यह अभिकथन करते हुए न्यायालय आए थे कि प्रथम प्रतिवादी ने उनके पक्ष में एक विक्रय अनुबंध निष्पादित किया था। प्रथम प्रतिवादी द्वारा उसका खंडन किए जाने पर, यह भार वादी पर था कि वह सिद्ध करे कि प्रथम प्रतिवादी ने अनुबंध निष्पादित किया था, न कि प्रथम प्रतिवादी पर कि वह नकारात्मक तथ्य को सिद्ध करे। मुद्दों ने भी दस्तावेज़ को सत्य सिद्ध करने का भार वादी पर ही रखा था। निस्संदेह, वादी ने स्वयं को, लेखक को तथा अभिप्रमाणक साक्षियों में से एक को परीक्षित कराकर अपने भार के निर्वहन का प्रयास किया। किन्तु विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा उल्लिखित विभिन्न परिस्थितियाँ, जब समग्र रूप से विचार की जाती हैं, तो अनुबंध की वास्तविकता के संबंध में उचित संदेह उत्पन्न करती हैं तथा अभियोजन साक्षी 1 से 3 के साक्ष्य के प्रभाव को निष्प्रभावित कर देती हैं। [कंडिका 17] [42-C-एच; 43-ए-बी]

द स्टेट (दिल्ली प्रशासन) बनाम पाली राम, 1979 (2) एस.सी.सी. 158; ओ. भरतन बनाम के. सुधाकरन, 1996 (2) एस.सी.सी. 704; अजीत सावंत मजगावई बनाम कर्नाटक राज्य, 1997 (7) एस.सी.सी. 110 — अवलंबित।

मुरारी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1980 (1) एस.सी.सी. 704; ललित पोपली बनाम केनरा बैंक एवं अन्य, 2003 (3) एस.सी.सी. 583 — अवलंबित तथा व्याख्यायित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 290/2001।

मद्रास के उच्च न्यायालय द्वारा एस.ए. संख्या 696/1987 में दिनांक 17/2/1999 को पारित निर्णय एवं आदेश से।

सुनीता शर्मा, अपीलकर्ता की ओर से।

के.के. मणि, सी.के.आर. लेनिन सेकर तथा मयूर आर. शाह, उत्तरदाताओं की ओर से।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदान किया गया :-

आर. वी. रवीन्द्रन, न्यायमूर्ति। यह विशेष अनुमति द्वारा दायर अपील, विशिष्ट पालन हेतु वाद—ओ.एस. संख्या 290/1980, जो जिला मुंसिफ, तिन्दीवनम के अभिलेख पर लंबित था, में वादी द्वारा दायर की गई है।

अभिकथन

2. वादपत्र में, वादी (अपीलकर्ता) ने अभिकथन किया कि प्रथम प्रतिवादी (आदिलक्ष्मी) ने दिनांक 5.1.1980 के विक्रय अनुबंध के अधीन वाद अनुसूची संपत्ति को ₹3,000/- के प्रतिफल पर उसे विक्रय करने के लिए सहमति दी थी तथा ₹2,000/- अग्रिम के रूप में प्राप्त किए थे। उसने तीन माह के भीतर ₹1,000/- की शेष प्रतिफल राशि प्राप्त कर विक्रय विलेख निष्पादित करने पर सहमति व्यक्त की थी। उक्त अनुबंध के अधीन वाद संपत्ति का कब्जा उसे प्रदान कर दिया गया था। उसने दिनांक 14.2.1980 की सूचना प्रेषित कर प्रथम प्रतिवादी को शेष विक्रय मूल्य प्राप्त कर विक्रय विलेख निष्पादित करने के लिए आह्वान किया। प्रथम प्रतिवादी ने अनुबंध का खंडन करते हुए प्रत्युत्तर भेजा। विक्रय अनुबंध का पालन करने से बचने के लिए प्रथम प्रतिवादी ने वाद संपत्ति के संबंध में द्वितीय प्रतिवादी (वर्तमान प्रथम उत्तरदाता) के पक्ष में, जो उसका निकट संबंधी था, एक नाममात्र का विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया। उक्त विक्रय उसके विरुद्ध न तो वैध था और न ही बाध्यकारी। उक्त अभिकथनों के आधार पर, उसने यह अभिकथन करते हुए कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तत्पर एवं इच्छुक था, प्रतिवादियों के विरुद्ध विक्रय अनुबंध के विशिष्ट पालन की प्रार्थना की।

3. प्रतिवादियों ने इस अभिकथन का खंडन किया कि प्रथम प्रतिवादी ने दिनांक 5.1.1980 का कोई विक्रय अनुबंध वादी के पक्ष में निष्पादित किया था अथवा वाद संपत्ति का कब्जा उसे प्रदान किया था। उनका कथन था कि वादी ने प्रतिवादियों को धोखा देने के

उद्देश्य से अपने सहयोगियों की सहायता से उक्त दस्तावेज़ को मनगढ़ंत एवं जाली रूप से तैयार किया था। उनका दावा था कि प्रथम प्रतिवादी ने दिनांक 11.2.1980 का एक वैध विक्रय विलेख द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित किया था तथा वाद संपत्ति का कब्जा उसे प्रदान कर दिया था; और यह कि द्वितीय प्रतिवादी ने वाद अनुसूची संपत्ति पर एक झोपड़ी निर्मित कर ली थी तथा वास्तव में उसी में निवास कर रही थी। द्वितीय प्रतिवादी ने एक अतिरिक्त अभिकथन यह किया कि वह प्रतिफल देकर क्रय करने वाली सद्भावी क्रेता थी और इसलिए उसके पक्ष में किया गया विक्रय वैध था।

4. वाद की लंबितावस्था के दौरान प्रथम प्रतिवादी की मृत्यु हो गई और तृतीय प्रतिवादी (वर्तमान द्वितीय उत्तरदाता) को उसके विधिक प्रतिनिधि के रूप में पक्षकार बनाया गया, जिसने द्वितीय प्रतिवादी के लिखित कथन को अपना लिया।

मुद्दे तथा निर्णय

5. उक्त अभिकथनों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा तीन मुद्दे निर्मित किए गए : (i) क्या वादी द्वारा प्रस्तुत किया गया अनुबंध सत्य था अथवा मनगढ़ंत? (ii) क्या द्वितीय प्रतिवादी ने वाद संपत्ति को वैध प्रतिफल पर क्रय किया था? तथा (iii) क्या वादी विशिष्ट पालन की राहत प्राप्त करने का अधिकारी था? वादी ने स्वयं को अभियोजन साक्षी-1 के रूप में, अनुबंध के लेखक (रामास्वामी पिल्लै) को अभियोजन साक्षी-2 के रूप में तथा विक्रय अनुबंध के एक अभिप्रमाणक साक्षी (वेंकटेशा पिल्लै) को अभियोजन साक्षी-3 के रूप में परीक्षित कराया। विक्रय अनुबंध को एक्स. ए-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया। सूचना तथा प्रत्युत्तर को एक्स. ए-2 तथा ए-4 के रूप में चिह्नित किया गया। द्वितीय प्रतिवादी (स्थल की क्रेता) ने प्रतिवादी साक्षी-1 के रूप में साक्ष्य दिया तथा तृतीय प्रतिवादी, जो दिनांक 11.2.1980 के विक्रय विलेख का भी एक साक्षी था, का परीक्षण प्रतिवादी साक्षी-2 के रूप में किया गया। प्रथम प्रतिवादी द्वारा द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित दिनांक

11.2.1980 के विक्रय विलेख को एक्स. बी-2 के रूप में तथा पूर्ववर्ती स्वत्व विलेख को एक्स. बी-4 के रूप में प्रदर्शित किया गया। वादी तथा उसके साक्षियों ने यह साक्ष्य दिया कि विक्रय अनुबंध प्रथम प्रतिवादी द्वारा वादी के पक्ष में विधिवत् निष्पादित किया गया था। प्रतिवादियों ने द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में किए गए विक्रय के संबंध में साक्ष्य दिया तथा वादी के पक्ष में किसी भी विक्रय अनुबंध के निष्पादन से इंकार किया।

6. विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात् दिनांक 28.2.1984 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा वाद खारिज कर दिया। उसने अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा प्रस्तुत विक्रय अनुबंध असत्य था तथा द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में दिनांक 11.2.1980 को हुए विक्रय के पश्चात्, उसके कब्जे में उपलब्ध कुछ पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग करके तैयार किया गया होगा। उक्त निष्कर्ष निम्नलिखित तथ्यों एवं परिस्थितियों पर आभिनर्धारित था :-

(क) विक्रय अनुबंध (एक्स. ए-1) वर्तमान में क्रय किए गए स्टाम्प पत्र पर निष्पादित नहीं किया गया था, बल्कि वह दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया था, जिनमें से एक दिनांक 25.8.1973 को तिरुवेंगडम के नाम से तथा दूसरा दिनांक 7.8.1978 को तिरुवेंगडम पिल्लै के नाम से क्रय किया गया था।

(ख) अनुबंध के दोनों अभिप्रमाणक साक्षी वादी के निकट संबंधी थे। उनमें से एक कन्नन, वादी का भाई था और उसका परीक्षण नहीं किया गया। दूसरा वेंकटेश पिल्लै था, जो वादी का चाचा था और जिसका परीक्षण अभियोजन साक्षी-3 के रूप में किया गया। लेखक (अभियोजन साक्षी-2) वादी की जाति का व्यक्ति था। उनका साक्ष्य विश्वसनीय नहीं था।

(ग) यद्यपि विक्रय अनुबंध में यह उल्लेख था कि वाद संपत्ति का कब्जा वादी को प्रदान कर दिया गया था, तथापि ऐसा कोई कब्जा प्रदान नहीं किया गया था। इसके

विपरीत, विक्रय विलेख के निष्पादन पर द्वितीय प्रतिवादी को कब्जा प्रदान किया गया था और उसने वाद अनुसूची संपत्ति पर फूस की एक झोपड़ी निर्मित कर ली थी तथा वह वास्तविक भौतिक कब्जे में थी। इससे अनुबंध असत्य सिद्ध होता था।

(घ) यदि वास्तव में कोई विक्रय अनुबंध हुआ होता, तो सामान्यतः वादी प्रथम प्रतिवादी से स्वत्व विलेख प्राप्त कर लेता। किन्तु पूर्ववर्ती स्वत्व विलेख उसे प्रदान नहीं किए गए थे। इसके विपरीत, वे द्वितीय प्रतिवादी को प्रदान किए गए थे, जिसने उन्हें एक्स. बी-3 तथा एक्स. बी-4 के रूप में प्रस्तुत किया।

(ङ) प्रतिवादियों द्वारा अनुबंध (एक्स. ए-1) का खंडन किए जाने के बावजूद, वादी अनुबंध के निष्पादन को सिद्ध करने के अपने भार का निर्वहन करने में असफल रहा, क्योंकि उसने यह स्थापित करने हेतु कि अनुबंध पर अंकित अंगूठा-निशान प्रथम प्रतिवादी का था, किसी अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ को संदर्भित करने का अनुरोध नहीं किया।

प्रथम तथा द्वितीय अपीलें

6. इससे व्यथित होकर, वादी ने उप-न्यायालय, तिन्दीवनम के समक्ष एक अपील दायर की। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 12.1.1987 के निर्णय द्वारा वादी की अपील स्वीकार कर ली, यह अभिनिर्धारित किया कि विक्रय अनुबंध सिद्ध हो गया है तथा विशिष्ट पालन प्रदान करते हुए वाद का डिक्रीकरण कर दिया। अपने निष्कर्ष के समर्थन में प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा निम्नलिखित कारण दिए गए :-

(क) अभियोजन साक्षी-1 (वादी), लेखक (अभियोजन साक्षी-2) तथा अभिप्रमाणक साक्षी (अभियोजन साक्षी-3) के साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि प्रथम प्रतिवादी द्वारा अनुबंध का विधिवत् निष्पादन किया गया था। चूँकि लेखक (अभियोजन साक्षी-2) वादी का संबंधी नहीं था तथा अभियोजन साक्षी-3 वादी का निकट संबंधी नहीं था, इसलिए उनके साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता था।

(ख) यह सिद्ध करने का भार कि विक्रय अनुबंध मनगढ़ंत तथा जाली था, प्रतिवादियों पर था और उन्हें यह स्थापित करने हेतु कि विक्रय अनुबंध (एक्स. ए-1) में अंकित विवादित अंगूठा-निशान, विक्रय विलेख (एक्स. बी-2) में प्रथम प्रतिवादी के स्वीकृत अंगूठा-निशान से भिन्न था, दस्तावेज का परीक्षण किसी अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ से कराने के लिए कदम उठाने चाहिए थे। वे ऐसा करने में असफल रहे।

(ग) उक्त दोनों दस्तावेजों के अवलोकन से विक्रय अनुबंध (एक्स. ए-1) में अंकित अंगुलि-निशान तथा द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख (एक्स. बी-2) में अंकित अंगुलि-निशान के बीच कोई उल्लेखनीय अंतर प्रतीत नहीं होता था। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि प्रथम प्रतिवादी ने अनुबंध का निष्पादन किया था।

(घ) विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर विक्रय अनुबंध का निष्पादन, अनुबंध को अवैध नहीं बनाता था।

8. इससे व्यथित होकर, द्वितीय प्रतिवादी ने द्वितीय अपील दायर की। उच्च न्यायालय ने दिनांक 17.2.1999 के निर्णय द्वारा द्वितीय अपील स्वीकार कर ली तथा वाद को खारिज कर दिया। विचारण न्यायालय के निर्णय को पुनर्स्थापित करते हुए उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विक्रय अनुबंध निम्नलिखित कारणों से वास्तविक नहीं था :-

(i) प्रथम अपीलीय न्यायालय ने नकारात्मक तथ्य को सिद्ध करने का भार गलत रूप से प्रतिवादियों पर डाल दिया था। चूँकि प्रथम प्रतिवादी ने अनुबंध के निष्पादन से इंकार किया था, इसलिए दस्तावेज के निष्पादन को स्थापित करने का भार वादी पर था। वादी स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा यह स्थापित करने में असफल रहा कि एक्स. ए-1 एक सत्य एवं वैध विक्रय अनुबंध था। समग्र रूप से परीक्षण किए जाने पर साक्ष्य इस बात के संबंध में पर्याप्त संदेह उत्पन्न करते थे कि उसका वास्तव में तथा वैध रूप से निष्पादन किया गया था।

(ii) अनुबंध (एक्स. ए-1) के अवलोकन से यह स्पष्ट होता था कि उस पर अंकित अंगूठा-निशान अत्यन्त फीका तथा अस्पष्ट था। प्रथम अपीलीय न्यायालय अनुबंध में अंकित विवादित अंगूठा-निशान तथा विक्रय विलेख में अंकित स्वीकृत अंगूठा-निशान की मात्र साधारण तुलना करके यह निष्कर्ष अभिलिखित नहीं कर सकता था कि दोनों दस्तावेजों (एक्स. ए-1 तथा एक्स. बी-2) में अंकित अंगूठा-निशानों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं था। किसी विशेषज्ञ के इस मत के अभाव में कि विक्रय अनुबंध पर अंकित अंगूठा-निशान प्रथम प्रतिवादी का था, प्रथम अपीलीय न्यायालय को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए था कि विक्रय अनुबंध का निष्पादन प्रथम प्रतिवादी द्वारा किया गया था।

(iii) सामान्यतः कोई अनुबंध उसके निष्पादन से ठीक पूर्व क्रय किए गए स्टाम्प पत्रों पर निष्पादित किया जाता है। यह तथ्य कि अनुबंध दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया था, जिन पर दिनांक 25.8.1973 तथा 7.8.1978 अंकित थी और जो दो भिन्न व्यक्तियों के नाम पर क्रय किए गए थे, यह दर्शाता था कि वह वास्तविक नहीं था, बल्कि पूर्व-तिथांकित तथा जाली था।

(iv) विक्रय अनुबंध के अभिप्रमाणक साक्षी वादी के निकट संबंधी थे। उनका साक्ष्य विश्वसनीय नहीं था।

विचारणार्थ बिंदु

8. उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय को इस विशेष अनुमति अपील में चुनौती दी गई है। अपीलकर्ता का तर्क था कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के उपबंधों को दृष्टिगत रखते हुए, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा एक्स. ए-1 में अंकित विवादित अंगूठा-निशान की तुलना एक्स. बी-2 में प्रथम प्रतिवादी के स्वीकृत अंगूठा-निशान से करने में कुछ भी अनुचित नहीं था; तथा ऐसी तुलना के आधार पर प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा

अभिलिखित यह निष्कर्ष कि दोनों अंगूठा-निशानों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं था, तथ्य का निष्कर्ष होने के कारण द्वितीय अपील में हस्तक्षेप के लिए खुला नहीं था। इसके पश्चात् यह तर्क दिया गया कि विक्रय अनुबंध का निष्पादन वादी (अभियोजन साक्षी-1), लेखक (अभियोजन साक्षी-2) तथा अभिप्रमाणक साक्षियों में से एक (अभियोजन साक्षी-3) के साक्ष्य द्वारा विधिवत् सिद्ध कर दिया गया था। यह इंगित किया गया कि विधिवत् निष्पादन के संबंध में अभियोजन साक्षी-1, अभियोजन साक्षी-2 तथा अभियोजन साक्षी-3 के साक्ष्य का खंडन करने हेतु कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं था, क्योंकि प्रथम प्रतिवादी साक्ष्य दिए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो गई थी तथा प्रतिवादियों ने यह सिद्ध करने के लिए कि विक्रय अनुबंध पर अंकित अंगूठा-निशान प्रथम प्रतिवादी का नहीं था, किसी अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ को संदर्भित करने का अनुरोध नहीं किया था। यह प्रस्तुत किया गया कि केवल इस कारण कि अनुबंध के लिए प्रयुक्त दो स्टाम्प पत्र विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए थे, अनुबंध पर संदेह नहीं किया जा सकता अथवा उसे अवैध नहीं ठहराया जा सकता। अतः अपीलकर्ता ने प्रस्तुत किया कि विक्रय अनुबंध विधिवत् सिद्ध किया जा चुका था।

9. उठाए गए तर्कों के आधार पर, विचारणार्थ निम्नलिखित प्रश्न उत्पन्न होते हैं :-

(i) क्या विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए तथा निष्पादन की तिथि से छह माह से अधिक पूर्व क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर निष्पादित विक्रय अनुबंध वैध नहीं है?

(ii) क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय, किसी विशेषज्ञ के मत के लाभ के बिना, विवादित अंगूठा-निशान की तुलना स्वीकृत अंगूठा-निशान से करके तथा अंगूठा-निशान की प्रामाणिकता के संबंध में निष्कर्ष अभिलिखित करने में न्यायोचित था?

(iii) क्या उच्च न्यायालय ने द्वितीय अपील में प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को उलटते समय त्रुटि की थी?

विषय: सवाल (i)

11. विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने दिनांक 5.1.1980 के अनुबंध की वास्तविकता पर इस कारण संदेह व्यक्त किया कि वह दिनांक 25.8.1973 तथा 7.8.1978 को क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया था। प्रथम उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ऐसे पुराने स्टाम्प पत्रों के उपयोग से न केवल दस्तावेज़ की प्रामाणिकता के संबंध में संदेह उत्पन्न होता है, बल्कि दो कारणों से स्वयं अनुबंध भी अवैध हो जाता है। प्रथम, किसी दस्तावेज़ के निष्पादन के लिए विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए स्टाम्प पत्रों का उपयोग करना अवैध था। द्वितीय, चूँकि विक्रय अनुबंध में प्रयुक्त स्टाम्प पत्र छह माह से अधिक पुराने थे, वे वैध स्टाम्प पत्र नहीं थे और परिणामस्वरूप ऐसे 'समाप्त अवधि' वाले पत्रों पर तैयार किया गया अनुबंध भी वैध नहीं था। हम पहले दूसरे तर्क पर विचार करेंगे। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 कहीं भी स्टाम्प पत्र के उपयोग हेतु कोई समाप्ति तिथि निर्धारित नहीं करता है। धारा 54 केवल यह उपबंधित करती है कि कोई व्यक्ति, जिसके पास ऐसा स्टाम्प पत्र है जिसका उसे तत्काल कोई उपयोग नहीं है (जो खराब अथवा अनुपयुक्त या अनुपयोगी नहीं हुआ है), ऐसे स्टाम्प पत्र को समर्पित करके उसका मूल्य वापस पाने की मांग समाहर्ता से कर सकता है, *बशर्ते कि वह उस तिथि से पूर्ववर्ती छह माह की अवधि के भीतर* क्रय किया गया हो जिस तिथि को उसे समर्पित किया गया है। धारा 54 में विनिर्दिष्ट छह माह की अवधि का उपबंध केवल अप्रयुक्त स्टाम्प पत्र के मूल्य की वापसी प्राप्त करने के प्रयोजन हेतु है, न कि स्टाम्प पत्र के उपयोग हेतु। धारा 54 उस व्यक्ति से, जिसने स्टाम्प पत्र क्रय किया है, यह अपेक्षा नहीं करती कि वह उसका उपयोग छह माह के भीतर करे। अतः प्रस्तावित निष्पादन की तिथि से छह माह से अधिक पूर्व क्रय किया गया स्टाम्प पत्र किसी दस्तावेज़ के लिए उपयोग किए जाने में कोई बाधा नहीं है।

12. अनेक राज्यों के स्टाम्प नियम यह उपबंधित करते हैं कि जब कोई व्यक्ति किसी विनिर्दिष्ट मूल्य के स्टाम्प पत्र क्रय करना चाहता है और उस मूल्य का एकल स्टाम्प पत्र उपलब्ध नहीं होता है, तब स्टाम्प विक्रेता उस विनिर्दिष्ट मूल्य को पूरा करने हेतु आवश्यक

संख्या में उपयुक्त स्टाम्प पत्र प्रदान कर सकता है; तथा यह कि जब एक ही संव्यवहार के संबंध में एक से अधिक स्टाम्प पत्र जारी किए जाते हैं, तब स्टाम्प विक्रेता के लिए उन्हें क्रमिक क्रमांक देना अपेक्षित होता है। कुछ राज्यों में नियम आगे यह भी अपेक्षा करते हैं कि स्टाम्प विक्रेता स्टाम्प पत्र पर यह प्रमाणित करते हुए एक पृष्ठांकन करे कि अपेक्षित मूल्य का एकल पत्र उपलब्ध नहीं था और इसलिए अपेक्षित स्टाम्प मूल्य को पूरा करने हेतु एक से अधिक पत्र (पत्रों की संख्या विनिर्दिष्ट करते हुए) जारी किए गए हैं। किन्तु तमिलनाडु में लागू भारतीय स्टाम्प नियम, 1925 में ऐसा कोई उपबंध नहीं है कि अपेक्षित मूल्य के स्टाम्प पत्र एक साथ, एक ही विक्रेता से तथा क्रमिक क्रमांकों के साथ क्रय किए जाएँ। नियम केवल यह उपबंधित करते हैं कि जहाँ किसी लिखत के संबंध में प्रभार्य शुल्क की राशि पूरी करने के लिए ऐसे दो या अधिक कागज़ों का उपयोग किया जाता है जिन पर स्टाम्प उत्कीर्ण अथवा मुद्रांकित हों, वहाँ उस लिखत का एक भाग प्रत्येक ऐसे प्रयुक्त कागज़ पर लिखा जाएगा। हमारे संज्ञान में कोई अन्य नियम नहीं लाया गया, जो तमिलनाडु राज्य में क्रमिक क्रमांक वाले स्टाम्प पत्रों के उपयोग की अपेक्षा करता हो। स्टाम्प अधिनियम एक राजस्व संबंधी अधिनियम है, जिसका उद्देश्य राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है। किसी ऐसे नियम के अभाव में, जो यह अपेक्षा करता हो कि उसी दिन क्रय किए गए क्रमिक क्रमांक वाले स्टाम्प पत्रों का उपयोग ऐसे लिखत के लिए किया जाए जिसका पंजीकरण अभिप्रेत नहीं है, किसी दस्तावेज़ को केवल इस कारण अवैध नहीं कहा जा सकता कि वह एक ही व्यक्ति द्वारा विभिन्न तिथियों पर क्रय किए गए दो स्टाम्प पत्रों पर लिखा गया है। यह मान भी लिया जाए कि ऐसे स्टाम्प पत्रों का उपयोग एक अनियमितता है, तब भी न्यायालय केवल यह मान सकता है कि दस्तावेज़ पर सम्यक् रूप से स्टाम्प नहीं लगाया गया है, किन्तु केवल उसी आधार पर दस्तावेज़ को अवैध नहीं ठहरा सकता। यदि कोई अनुबंध अपेक्षित स्टाम्प पत्र पर निष्पादित नहीं किया गया है, तब भी वह भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 अथवा 37 के अधीन शुल्क एवं शास्ति का भुगतान किए

जाने पर साक्ष्य में ग्राह्य है। यदि साधारण कागज़ पर निष्पादित कोई अनुबंध शुल्क एवं शास्ति का भुगतान करके साक्ष्य में ग्राह्य हो सकता है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि दो स्टाम्प पत्रों पर निष्पादित अनुबंध, यह मान भी लिया जाए कि वे दोषपूर्ण थे, शुल्क एवं शास्ति के भुगतान पर स्वीकार न किया जा सके। किन्तु किसी दस्तावेज़ का साक्ष्य में ग्राह्य होना और ऐसे दस्तावेज़ की वास्तविकता का सिद्ध होना, भिन्न-भिन्न प्रश्न हैं।

13. यदि कोई व्यक्ति कोई पूर्व-तिथांकित अनुबंध तैयार करना चाहता है, तो उसके समक्ष पहली बाधा उस पुरानी तिथि के स्टाम्प पत्र की अनुपलब्धता होती है। इसलिए, जाली दस्तावेज़ों में स्टाम्प विक्रेता द्वारा अंकित निर्गमन तिथि तथा मुहर के साथ छेड़छाड़ करना, तथा स्टाम्प विक्रेता द्वारा की गई प्रविष्टियों में परिवर्तन करना, अत्यन्त सामान्य बात है। जब अनुबंध दिनांक 5.1.1980 का हो और उसमें प्रयुक्त स्टाम्प पत्र वर्ष 1973 तथा 1978 में क्रय किए गए हों, तब संभावित निष्कर्षों में से एक यह हो सकता है कि वादी, द्वितीय प्रतिवादी के पक्ष में विक्रय की तिथि से पूर्व की तिथि वाला स्टाम्प पत्र प्राप्त कर पाने में असमर्थ होने के कारण, अनुबंध तैयार करने हेतु अपने पास उपलब्ध कुछ पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग करके दस्तावेज़ को गढ़ लिया हो। विभिन्न तिथियों के अत्यन्त पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग किया जाना निश्चय ही ऐसी परिस्थिति हो सकती है, जिसका उपयोग अनुबंध की प्रामाणिकता पर संदेह उत्पन्न करने हेतु साक्ष्य के एक अंश के रूप में किया जा सकता है। किन्तु वह निर्णायक साक्ष्य नहीं हो सकता। यह संभावना भी है कि स्टाम्प संबंधी विधिक उपबंधों से अपरिचित कोई सामान्य व्यक्ति सद्भावनापूर्वक यह समझे कि वह अपने पास पड़े पुराने अप्रयुक्त स्टाम्प पत्रों का उपयोग दस्तावेज़ तैयार करने हेतु कर सकता है और तदनुसार उन पुराने स्टाम्प पत्रों का उपयोग कर ले।

विषय: बिंदु संख्या (iii)

14. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 45 'विशेषज्ञों के मत' से संबंधित है। यह अन्य बातों के साथ उपबंधित करती है कि जब न्यायालय को हस्तलेख अथवा अंगुलि-निशानों की पहचान के संबंध में कोई मत बनाना हो, तब हस्तलेख अथवा अंगुलि-निशानों की पहचान से संबंधित प्रश्नों में विशेष कौशल रखने वाले व्यक्तियों का उस बिंदु पर मत सुसंगत तथ्य होता है। धारा 73 यह उपबंधित करती है कि यह पता लगाने के लिए कि कोई अंगुलि-निशान उसी व्यक्ति का है अथवा नहीं, जिसके द्वारा उसके बनाए जाने का अभिप्राय व्यक्त किया गया है, उस व्यक्ति द्वारा बनाया गया स्वीकार किया गया कोई भी अंगुलि-निशान उस अंगुलि-निशान से तुलना किया जा सकता है, जिसे सिद्ध किया जाना है। ये उपबंध इस न्यायालय के अनेक निर्णयों का विषय रहे हैं।

14.1) *द स्टेट (दिल्ली प्रशासन) बनाम पाली राम* [1979 (2) एस.सी.सी. 158] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि न्यायालय विवादित लेखन की तुलना पक्षकार के स्वीकृत लेखन से करके अपना स्वयं का निष्कर्ष निकालता है, तो वह धारा 73 के अधीन अपनी शक्ति का अतिक्रमण नहीं करता है। किन्तु इस न्यायालय ने सावधान करते हुए कहा:

“यद्यपि न्यायाधीश द्वारा किसी हस्तलेख विशेषज्ञ के साक्ष्य की सहायता के बिना भी, अपनी आँखों का उपयोग करके विवादित लेखन की तुलना स्वीकृत लेखन से करने पर कोई विधिक निषेध नहीं है, तथापि विवेक एवं सावधानी के विषय के रूप में, न्यायाधीश को किसी ऐसे हस्तलेख की पहचान के संबंध में अपना निष्कर्ष, जो किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध अभियोजन के मामले का मुख्य आधार हो, केवल स्वयं द्वारा की गई तुलना पर आभिमनिर्धारित करने में संकोच करना चाहिए। अतः यह उचित नहीं है कि न्यायाधीश स्वयं यह कार्य अपने ऊपर ले ले कि वह स्वीकृत लेखन और विवादित लेखन की तुलना करके यह पता लगाए कि दोनों एक-

दूसरे से मेल खाते हैं या नहीं; और विवेकपूर्ण मार्ग यह है कि किसी विशेषज्ञ का मत एवं सहायता प्राप्त की जाए।”

यह सावधानी *ओ. भरतन बनाम के. सुधाकरन-1996* (2) एस.सी.सी. 704 में पुनः दोहराई गई थी। पुनः, *अजीत सावंत मजगावई बनाम कर्नाटक राज्य* [1997 (7) एस.सी.सी. 110] में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 का उल्लेख करते हुए, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :-

“इस धारा में यह विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि तुलना किसके द्वारा की जाएगी। तथापि, अधिनियम के अन्य उपबंधों को देखने से यह स्पष्ट है कि ऐसी तुलना या तो धारा 45 के अधीन किसी हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा, अथवा धारा 47 में उपबंधित अनुसार संबंधित व्यक्ति के हस्तलेख से परिचित किसी व्यक्ति द्वारा, अथवा स्वयं न्यायालय द्वारा की जा सकती है।”

“अत्यधिक सावधानी तथा न्यायिक संयम के विषय के रूप में, न्यायालय को सामान्यतः विवादित हस्ताक्षर की तुलना स्वीकृत हस्ताक्षर अथवा हस्तलेख से करने का दायित्व स्वयं अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए और यदि किंचित् मात्र भी संदेह हो, तो विषय को विशेषज्ञों के विवेक पर छोड़ देना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायालय को विवादित हस्ताक्षर की तुलना स्वीकृत हस्ताक्षर से करने की शक्ति प्राप्त नहीं है, क्योंकि यह शक्ति अधिनियम की धारा 73 के अधीन स्पष्ट रूप से उपलब्ध है।”

41.2) *मुरारी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य*, 1980 (1) एस.सी.सी. 704 में, इस न्यायालय ने उन परिस्थितियों का संकेत किया था जिनमें न्यायालय स्वयं विवादित एवं स्वीकृत लेखनों की तुलना कर सकता है, इस प्रकार :-

“यह तर्क कि न्यायालय को स्वयं लेखनों की तुलना करने का साहस नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से वह स्वयं विशेषज्ञ की भूमिका ग्रहण कर लेगा, पूर्णतः निराधार है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 स्पष्ट रूप से न्यायालय को यह अधिकार

प्रदान करती है कि वह विवादित लेखन की तुलना स्वीकृत अथवा सिद्ध लेखन से करके यह निर्धारित करे कि लेखन उसी व्यक्ति का है अथवा नहीं, जिसके द्वारा उसके लिखे जाने का अभिप्राय व्यक्त किया गया है। यदि ऐसा करना जोखिमपूर्ण है, जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है, तो हमें भय है कि यह उन जोखिमों में से एक है जिनका सामना न्यायाधीश और वादकारी दोनों को तब करना पड़ता है जब ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहाँ दोनों पक्ष विशेषज्ञों को बुलाएँ और विज्ञान की आवाज़ें सुनी जाएँ। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ कोई भी पक्ष विशेषज्ञ को न बुलाए, क्योंकि उसकी सेवाएँ वहन करने में वे असमर्थ हों। ऐसे सभी मामलों में, लेखनों की तुलना करना और अपना स्वयं का निष्कर्ष निकालना न्यायालय का स्पष्ट कर्तव्य बन जाता है। यह कहकर कि न्यायालय कोई विशेषज्ञ नहीं है, इस कर्तव्य से बचा नहीं जा सकता। जहाँ विशेषज्ञों के मत उपलब्ध हों, वे न्यायालय की सहायता करेंगे। जहाँ ऐसा कोई मत उपलब्ध न हो, वहाँ न्यायालय को किसी प्रामाणिक ग्रंथ तथा अपने स्वयं के अनुभव और ज्ञान से मार्गदर्शन प्राप्त करना होगा। किन्तु अपने इस स्पष्ट कर्तव्य का निर्वहन उसे करना ही होगा, चाहे विशेषज्ञ हो या न हो, और चाहे अन्य साक्ष्य हों या न हों।”

मुरारी लाल (उपर्युक्त) के निर्णय का अनुसरण *ललित पोपली बनाम केनरा बैंक एवं अन्य* [2003 (3) एस.सी.सी. 583] में किया गया था।

15. यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायालय विवादित हस्तलेख/हस्ताक्षर/अंगुलि-निशान की तुलना स्वीकृत हस्तलेख/हस्ताक्षर/अंगुलि-निशान से कर सकता है, तथापि किसी विशेषज्ञ की सहायता के बिना न्यायालय द्वारा की गई ऐसी तुलना को सदैव जोखिमपूर्ण और संकटपूर्ण माना गया है। जब यह कहा जाता है कि न्यायालय को विवादित अंगुलि-निशान की तुलना स्वीकृत अंगुलि-निशान से करने से कोई

निषेध नहीं है, तो यह स्वतः स्पष्ट है कि वह ऐसी तुलना के आधार पर मत अथवा निष्कर्ष तभी अभिलिखित कर सकता है, जब वह स्वीकृत अंगुलि-निशान की विशेषताओं का विश्लेषण कर ले तथा यह सत्यापित कर ले कि वही विशेषताएँ विवादित अंगुलि-निशान में भी विद्यमान हैं। दो अंगूठा-निशानों की तुलना साधारण अथवा मात्र एक दृष्टिपात से नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त, निर्णय में यह निष्कर्ष कि स्वीकृत अंगूठा-निशान और विवादित अंगूठा-निशान के बीच कोई उल्लेखनीय अंतर प्रतीत नहीं होता, और उससे अधिक कुछ नहीं, इस रूप में वैध निष्कर्ष के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता कि विवादित अंगूठा-निशान उसी व्यक्ति का है जिसने स्वीकृत अंगूठा-निशान अंकित किया है। जहाँ न्यायालय यह पाता है कि विवादित अंगुलि-निशान तथा स्वीकृत अंगूठा-निशान स्पष्ट हैं और न्यायालय अंगुलि-निशानों की विशेषताओं की पहचान करने की स्थिति में है, वहाँ वह विशेषज्ञ के मत के अभाव में भी तुलना के आधार पर निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है। किन्तु जहाँ विवादित अंगूठा-निशान धुंधला, अस्पष्ट अथवा अत्यन्त हल्का हो, वहाँ न्यायालय को केवल साधारण अवलोकन के आधार पर अनुमान लगाने का जोखिम नहीं उठाना चाहिए। मुरारी लाल (उपर्युक्त) तथा ललित पोपली (उपर्युक्त) के निर्णयों का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि न्यायालय विवादित एवं स्वीकृत अंगुलि-निशानों की तुलना करने तथा उन पर निष्कर्ष अभिलिखित करने के लिए बाध्य है, चाहे विवादित अंगुलि-निशान की स्थिति कैसी भी हो। जब उस व्यक्ति द्वारा, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने अपना अंगुलि-निशान अंकित किया है, उसका स्पष्ट रूप से खंडन किया गया हो और विवादित दस्तावेज़ में अंकित अंगुलि-निशान धुंधला, अस्पष्ट अथवा स्पष्ट न हो, जिससे तुलना करना कठिन हो जाए, तब न्यायालय को विवादित तथा स्वीकृत अंगुलि-निशानों की अपनी स्वयं की तुलना के आधार पर निष्कर्ष देने में संकोच करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, ऐसे मामलों में भी जहाँ न्यायालय ऐसी तुलना करने के लिए विवश हो, उसे आवश्यक होने पर अधिवक्ताओं की सहायता से, विशेषताओं, समानताओं तथा असमानताओं का निर्धारण करने हेतु गहन अध्ययन करना

चाहिए। स्वाभाविक रूप से, यदि न्यायालय अंगूठा-निशान की तुलना के आधार पर कोई निष्कर्ष अभिलिखित करना चुनता है, तो निर्णय में उस निष्कर्ष के कारण भी अवश्य होने चाहिए। न्यायालय को केवल साधारण अथवा नियमित दृष्टिपात या अवलोकन के आधार पर निष्कर्ष निकालने से बचना चाहिए।

16. इस मामले में प्रथम प्रतिवादी ने एक्स. ए-1 पर अपना अंगुलि-निशान अंकित किए जाने से इंकार किया था। साक्ष्य देने की उसकी बारी आने से पूर्व ही वाद की लंबितावस्था के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। उच्च न्यायालय ने दस्तावेज़ का परीक्षण करने के पश्चात् स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि एक्स. ए-1 पर अंकित अंगूठा-निशान फीका (अर्थात् हल्का) तथा अस्पष्ट था। यद्यपि दस्तावेज़ वर्ष 1980 का दिनांकित था, तथापि उसका निष्पादन दो ऐसे स्टाम्प पत्रों पर किया गया था जो क्रमशः वर्ष 1973 तथा 1978 में क्रय किए गए थे। अनुबंध में इस उल्लेख के विपरीत कि कब्जा वादी को प्रदान कर दिया गया था, वास्तव में कब्जा वादी को नहीं दिया गया था, बल्कि वह प्रथम प्रतिवादी के पास ही बना रहा और उसने ही कब्जा द्वितीय प्रतिवादी को प्रदान किया। स्वत्व विलेख भी वादी को नहीं सौंपे गए थे। अभिप्रमाणक साक्षी वादी के निकट संबंधी थे तथा उनमें से एक का परीक्षण नहीं किया गया। लेखक का साक्ष्य भी संतोषजनक नहीं था। यह विश्वास करना भी कठिन था कि प्रथम प्रतिवादी, जो गाँव की एक अशिक्षित वृद्ध महिला थी, दिनांक 5.1.1980 को वादी के साथ विक्रय अनुबंध करेगी और उसके विक्रय को पूर्ण करने के लिए तैयार होने के बावजूद, मात्र लगभग एक माह बाद, दिनांक 11.2.1980 को वही संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति को विक्रय कर देगी। इस पृष्ठभूमि में, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा किसी विशेषज्ञ के मत का लाभ प्राप्त किए बिना, केवल साधारण अवलोकन के आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित करना कि दोनों अंगूठा-निशानों के बीच कोई उल्लेखनीय अंतर प्रतीत नहीं होता और इसलिए एक्स. ए-1 (विक्रय अनुबंध) का निष्पादन प्रथम प्रतिवादी द्वारा किया गया होगा, उचित नहीं था। उच्च न्यायालय प्रथम अपीलीय न्यायालय के इस निष्कर्ष में

हस्तक्षेप करने के लिए न्यायोचित था कि एक्स. ए-1 का निष्पादन प्रथम प्रतिवादी द्वारा किया गया था।

विषय: बिंदु संख्या (iii)

17. विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का सम्यक् विश्लेषण किया था और ठोस कारण देते हुए वाद को खारिज कर दिया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रतिवादियों पर गलत रूप से भार डालते हुए उस निर्णय को पलट दिया। उसका यह अवलोकन कि जब वादी द्वारा प्रस्तुत अपंजीकृत दस्तावेज के निष्पादन का प्रतिवादियों द्वारा खंडन किया गया हो, तब यह प्रतिवादियों का दायित्व है कि वे यह सिद्ध करें कि दस्तावेज जाली अथवा मनगढ़ंत है, कोई सुदृढ़ विधिक प्रतिपादन नहीं है। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने इस आधार पर कार्य किया कि जो पक्ष किसी तथ्य का अभिकथन करता है, उसी पर उसे सिद्ध करने का भार होता है; और चूँकि प्रतिवादियों ने यह आरोप लगाया था कि अनुबंध जाली है, इसलिए उसे सिद्ध करना उनका दायित्व था। किन्तु प्रथम अपीलीय न्यायालय इस तथ्य को दृष्टि से ओझल कर बैठा कि जो पक्ष किसी दस्तावेज का अवलंबन करता है, उसी पर उसे सिद्ध करने का दायित्व होता है। वर्तमान मामले में वादीगण न्यायालय में यह अभिकथन करते हुए आए थे कि प्रथम प्रतिवादी ने उनके पक्ष में एक विक्रय अनुबंध निष्पादित किया था। प्रथम प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन किए जाने के कारण यह सिद्ध करने का भार वादी पर था कि प्रथम प्रतिवादी ने अनुबंध का निष्पादन किया था, न कि प्रथम प्रतिवादी पर यह नकारात्मक तथ्य सिद्ध करने का कि उसने ऐसा नहीं किया। मुद्दों ने भी दस्तावेज को सत्य सिद्ध करने का भार वादी पर ही रखा था। निःसंदेह, वादी ने स्वयं का, लेखक का तथा अभिप्रमाणक साक्षियों में से एक का परीक्षण कराकर अपने भार के निर्वहन का प्रयास किया। किन्तु विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा पूर्व में उल्लिखित विभिन्न परिस्थितियाँ, जब समष्टिगत रूप से देखी जाती हैं, तो वे उचित रूप से अनुबंध की वास्तविकता के संबंध में संदेह उत्पन्न

करती हैं तथा अभियोजन साक्षी-1 से 3 के साक्ष्य के प्रभाव को निष्प्रभावित कर देती हैं। अतः हमारा मत है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को उलटने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप किए जाने का कोई आधार नहीं बनता।

18. अतः, हमें इस अपील में कोई बल नहीं प्रतीत होता और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है। पक्षकार अपने-अपने व्यय स्वयं वहन करेंगे।

अपील खारिज।

के.के.टी.

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।